अध्याय : 2

नाटक में पात्र-सृष्टि और चरित्र-चित्रण

अध्याय : 2

नाटक में पात्र-सृष्टि और चरित्र-चित्रण

भूमिका

नाटक मानव जीवन के गत्यात्मक सौन्दर्य की अभिनव सृष्टि है। नाटक और अन्य साहित्यिक विधाओं में अंतर है। नाटक को रंगमंच का विशेष वरदान प्राप्त हुआ है जिसकी वजह से वह सीधे दर्शकों तक पहुँच सकता है। भारतीय और पाश्चात्य आचार्यो ने नाटक के ततवों पर काफी विचार किया है। इन तत्वों में मुख्यतया कथावस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल और वातावरण, अभिनेयता और रंगमंचीयता उद्देश्य आदि का विशेष महत्व है। हमारा प्रतिपाद्य नाटक में चरित्र-सृष्टि और चरित्र-चित्रण है, जिसका विवेचन विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है।

नाटक का महत्व

नाटक को रंगमंच का वरदान प्राप्त होने से उसकी लोकप्रियता बढ़ गयी है। नाटक एक ऐसी कला है जो रंगमंच पर प्रदर्शित की जाती है। नाट्याचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र ग्रंथ में नाटक के महत्व पर काफी प्रकाश डाला गया है। उनके अनुसार इस §नाट्य वेद में§ में कही धर्म है, कहीं क्रिडा है। कहीं अर्थ है, कहीं श्रम है, कहीं हस्य है, कहीं युद्ध है, कहीं काम है, कहीं वध का अनुकरण ही है।

"क्वचिद्धर्म क्वचित्क्रीडा क्वचिदर्थः क्वचिच्छम्ः।
क्वचिच्दास्यं क्वचियुद्धं क्वचित्कामः क्वचिदवधः।।[1]

इस नाट्यभेद में धर्मोपासकों के लिए धर्म है, काम की इच्छा करने वाले लोगों के लिए काम है। बुराई करने वालों के लिए दण्डविधान है और मदमत्त व्यक्तियों के लिए दमन करने की क्रियाएँ है।

"धर्मो धर्मप्रवृत्तानां कामः कामोपसेविनाम्।
निग्रहो दुर्विनीतानां मत्तानां दमनक्रिया।[2]

भरतमुनि के अनुसार इस नाट्य वेद में न ऐसा कोई ज्ञान है, न शिल्प है, न विद्या है, न कला है, न योग है, न कार्य है, जो इस नाट्य में प्रदर्शित न किया जाता है। इसमें सभी शिल्पों, सभी शास्त्रों तथा अनेक प्रकार के कार्यों का समावेश रहता है।

"न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ।।
सर्वशास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च।
अस्मिन्नाटये समेतानि तस्मादेतन्मया कृतम् ।।[3]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि नाटक में मानव जीवन के लिए जितनी बातें आवश्यक हैं और जिन बातों को वह चाहती है वे सब बातें नजर आती हैं।

नाटक के तत्व

भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यो ने नाटकों के तत्वों पर अपने-अपने विचार व्यक्त किये हैं। भारतीय विचारधारा दशरूपककार धनंजय ने नाटक के तीन प्रमुख भेद माने हैं - "वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः[4] अर्थात वस्तु, नेता तथा रस।

यहाँ वस्तु का मतलब है कथावस्तू, नेता का मतलब है पात्र अर्थात नायक और रस का मतलब है नाट्यानंद।

उपर के तत्वों के अतिरिक्त वृत्ति और अभिनय दो भेद माने गये हैं।

पाश्चात्य विचारधारा

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अनुसार नाटक के प्रमुख तत्व हैं कथावस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल और वातावरण, उद्देश्य और रंगमंचीयता।

हमारे लघु-शोध-प्रबंध का मुख्य प्रतिपाद्य पात्र और चरित्र-चित्रण है जिसका विवेचन नीचे किया गया है।

पात्र : शब्दप्रयोग

"पात्र" शब्द संस्कृत की "पा"धातु के साथ "ष्ट्रन" प्रत्यय युक्त करने व्युत्पन्न होता है। पात्र का अर्थ है पीने का बर्तन, गिलास, जलाशय योग्य व्यक्ति, अभिनेता, नाटक का पात्र, नदी का पात्र इ.[5]

साहित्यिक समीक्षा में "पात्र" के साथ "चरित्र" शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। सामान्यतया पात्र और चरित्र में कोई फर्क नहीं है। नाटक के नायक अथवा केंद्रीय पात्र से लेकर गौण एवं नगण्य सभी अभिकर्ता मूलतः पात्र होते हैं।

साहित्य में पात्र का महत्व

साहित्य में पात्र का अनन्य साधारण महत्व है। साहित्य के बिना पात्र की ओर पात्र के बिना साहित्य की सृष्टि हो ही नहीं सकती। साहित्य का केन्द्रबिन्दु मानव है अतः साहित्य में पात्र के रूप में मानव का ही चित्र अंकित किया जाता है। साहित्य के अनेक रूप माने गये हैं। प्रबंध काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि। पात्रों के शील, स्वभाव, आचार-विचार, आहार-व्यवहार आदि को साहित्यकार अपनी प्रतिभा के द्वारा शब्दबद्ध करता है। देशकाल परिस्थिति के अनुसार साहित्य में पात्रों की सृष्टि की जाती है। भारतीय साहित्य के आधार पर डॉ.रमाशंकर त्रिपाठी ने साहित्य में पात्र का स्थान और महत्त्व विशद करते हुए उचित ही लिखा है "भास के उदयन और वासवदत्ता, कालिदास के दुष्यन्त ओर शकुंतला, भवभूति के राम और सीता, प्रसाद के स्कन्द और देवसेना, शरश्चंद्र के सतीश और सावित्री,

प्रेमचन्द के होरी और धनिया, अज्ञेय के शेखर और शशी आदि की ही सृष्टि नहीं है। उस पर समग्र जातीय जीवन की सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना का भी अन्तरीण प्रभाव है। इसलिए साहित्य में पात्र का स्थान असाधारण होना महिमा खण्डित है। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि साहित्य में पात्रों का स्थान निश्चय ही महत्वपूर्ण है।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण-विधि

भारतीय विचारधारा

संस्कृत के आचार्यो ने नाटक के पात्रों को अनेक वर्गो में विभक्त किया है। नाटक का प्रमुख पात्र नायक कहलाता है। उसे नाटक का नेता भी कहा जाता है। "नेता" शब्द "नी" धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ ले चलना होता है। नायक कथा को फल की ओर ले जाता है। भारतीय नाट्यशास्त्र में नायक को सर्वगुण संपन्न माना गया है।

नायक

रूपककार धनंजय के अनुसार नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रिय बोलने वाला, लोगों को खुश करनेवाला,पवित्र मनवाला, बातचीत करने में कुशल, कुलीनवंश में उत्पन्न, मन आदि से स्थिर युवक होता है। वह बुद्धि, उत्साही, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मन से युक्त होता है। वह शूर, दृढ, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक होता है यथा -

"नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा ।।
बुद्धयुत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचलुक्षुश्च धार्मिक :।।[6]

प्रकृति के अनुसार नायक के चार भेद किये गये हैं - धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत।

धीरोदात्त नायक : दशरूपककार के अनुसार शोक-क्रोध आदि से अविचलित, अन्तकरण से अत्यन्त गम्भीर, क्षमावान, आत्मश्लाघा न करनेवाला, अहंकारशून्य और दृढ़व्रत नायक धीरोदात्त नायक कहलाता है।

धीर ललित नायक : सुखान्वेषी, कलाविद् निश्चित, मृदुल स्वभाव का होता है।

धीरप्रशान्त नायक : यह नायक शान्तिप्रिय, विनम्र शान्त स्वभाव का ब्राह्मण या वैश्य होता है।

धीरोद्दत नायक : यह मायावी, कुटिल, चपल, कपटी, घमंडी, आत्मप्रशंसापरायण तथा प्रचंड स्वभाव का होता है।

शृंगारिकता की दृष्टि से भी नायक के चार भेद होते हैं - दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ। "दक्षिण" नायक कई पंक्तियों के होते हुए भी सबसे समान अनुराग रखता है। जो नायक अपने प्रत्यक्ष अपराध के दृष्टिगत होने पर लज्जित न हो, झूठ बोले, निःशंक रहे और झिडकियाँ खाये, वह "धृष्ट" नायक होता है। "अनुकूल" नायक एक पत्नीव्रत का पालन करने वाला होता है। "शठ" नायक किसी दूसरी नायिका में अनुरक्त रहता है। हास्य के बिना मानव का जीवन व्यर्थ है। हास्य दुःख को दूर करने का एक माध्यम है। नाटक में विदूषक का प्रयोग मुख्यतया हास्य के निमित्त ही किया जाता है। इसका मुख्य कार्य हास्य उत्पन्न करना ही है। "हास्य कृच्यविदूषकम्"

नायिका

नाटक में नायक के ही समान नायिका का भी महत्वपूर्ण स्थान है। नायिका के वैशिष्ट्य पर संस्कृत आचार्यों ने व्यापक प्रकाश डाला है। नायिका के लिए रूप, गुण, शील, प्रेम, यौवन, मोहक रंग, कुलीनता, और अलंकार आवश्यक हैं। कार्य, आयु, जाति, परिस्थिति आदि के आधार पर नायिकाओं के विभिन्न भेद किये गये हैं। कार्य के अनुसार तीन प्रकार की नायिकाएँ होती हैं - स्वकीया, परकीया और

सामान्या। "स्वकीया" नायक की विवाहिता पत्नी होती है। "परकीया" नायक की पत्नी होकर किसी अन्य की पत्नी या अविवाहिता होती है। "सामान्या" नायिका गणिका अथवा वेश्या होती है। यह निकृष्ट कोटि की नायिका मानी जाती है। आयु के अनुसार भी नायिकाओं के तीन भेद किये जाते हैं - मुग्धा, मध्या, और प्रौढा। "मुग्धा" में रति तथा लज्जा के भाव अधिक होता है। मुग्धा नायिका अवस्था तथा कामवासना दोनों में नई रहती है, रति से वह वाम रहती है अर्थात् रति से कतराती है तथा नायक से मानादि में क्रोध करने में भी कोमल होती है यथा-

"मुग्धा नववयःकामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि।"[8]

"मध्या" में रति तथा लज्जा के भाव समान मात्रा में होते हैं और "प्रौढ़ा" में लज्जा भाव की अपेक्षा रतिभाव अधिक होता है। जाति के अनुसार नायिकाओं के चार भेद हैं - पद्मिनी, शंखिनी, चित्रणी और हस्तिनी। परिस्थिति के अनुसार नायिकाओं को आठ भागों में बंटा गया है - स्वाधीनप्रतिका, वासकसज्जा , विरहोत्कंठिता, कलहांतरिता, अभिसारिका, विप्रलब्धा, खंडिता और प्रोषितपतिका।

अन्य-पात्र

नायक और नायिका के अतिरिक्त नाटक में अन्य सहायक पात्र होते हैं जो कथावस्तु को आगे बढ़ाने में उपयोगी होते हैं, जैसे - प्रतिनायक, पीठमर्द, विदूषक, चेट, विट, कंचुकी आदि। "प्रतिनायक" नायक का प्रतिदंदी होता है और मूल कथा का नेता का सहायक होता है। "चेट" नायक का अनुचर होता है। "विट" वह पात्र है जो वाद्य गायन में निपुण होता है और नायक का अन्तरंग सेवक होता है। "कंचुकी" संस्कृत नाटकों का एक अन्य प्रमुख पात्र है जो वृद्ध ब्राह्मण होता है और जिसे अन्तःपुर में आने-जाने की स्वतंत्रता होती है। वह लोक-व्यवहार में कुशल और सभी शास्त्रों का ज्ञाता होता है।

पाश्चात्य विचारधारा

नायक

भारतीय आचार्यों की भाँति पाश्चात्य आचार्यों ने भी नाटक के पात्र और चरित्र सृष्टि पर गम्भीरता से विचार किया है। जिस प्रकार भारतीय विचारधारा के अनुसार "पात्र" और "चरित्र" शब्द एक विशिष्ट अर्थ रखते हैं उसीप्रकार पश्चिमी

विचारधारा मे नाटकीय पात्रों के अर्थ मे ग्रीक और लैटीन भाषाओं में "परसो"ने"[9] शब्द का प्रयोग किया गया है।

अरस्तू के अनुसार चरित्र-चित्रण के लिए नाटककार को छः बातों की ओर ध्यान देने की जरूरत है - 1·भद्रता, 2·औचित्य, 3·जीवनानुकलता, 4·एकरूपता, 5·संभाव्यता, 6·श्रेष्ठ चित्रकारों का आदर्श।

अरस्तू ने त्रासदी के नायक के गुणों पर भी प्रकाश डाला है। त्रासदी का नायक खल पात्र नहीं होना चाहिए। वह निर्दोष नितांत सज्जन भी नहीं होना चाहिए। इन दो बातों के अतिरिक्त त्रासदी का नायक सहज मानव भावनाओं से युक्त होना चाहिए वह अत्यंत वैभवशाली यशस्वी और कुलीन पुरूष हो।[10]

खलनायक : मनुष्य गुणावगुणों का समुच्चय है उसमें कुछ सद्‌गुण और कुछ दुर्गुण भी होते हैं। कभी कभी वह अपने अवगुणों के द्वारा दुष्ट बन जाता है।

नायिका : पाश्चात्य नाट्यालोचन में "त्रासदी" के साथ ही साथ "कामदी" पर भी विचार किया गया है। जहाँ त्रासदी में पुरूष पात्रों को भी सर्वाधिक महत्व दिया गया है। वहाँ कामदी में स्त्री पात्रों को भी पुरूष पात्रों के साथ महत्व पूर्ण माना गया है। कामदी के पात्रों में काल्पनियता के स्थान पर यथार्थवादिता होती है। कामदी में वस्तु की अपेक्षा चरित्र को अधिक महत्व दिया जाता है।

कामदी के नायिकाओं के बारे में डॉ·रमाशंकर तिवारी का कहना है कि "कामदी में प्रभाव की पारदर्शकता के कारण स्त्री का मोहक, चपल, प्रेमल रूप वर्णीय होता है इसलिए प्रतीच्य कामदी की नायिका प्राच्य नायिका - भेद के अंतर्गत रूपायित की जा सकती है अर्थात भारतीय नायिका के रूप, गुण, अलंकार आदि का दर्शन पाश्चात्य कामदी नायिकाओं में किया जा सकता है।[11]

चरित्र और मनोविज्ञान

नाटककार जिन पात्रों की सृष्टि अपने नाटक में करता है उसमें उनका द्वन्द विशेष महत्वपूर्ण होता है। बिना द्वन्द के चरित्रसृष्टि नीरस और निष्प्रभ होगी।

नाटक में चरित्र-चित्रण का महत्व निःसंदेह है। सामान्यतया स्पष्ट है कि बिना चरित्र और चरित्र-चित्रण के अभाव में नाटक की संरचना नहीं हो सकती। नाटक में चरित्र का इसलिए महत्व है कि वह मानव की "प्रत्यक्ष भावात्मक प्रवृत्तियों की व्यवस्था है।"[12]

नाटक में चरित्र की सृष्टि में पात्र के व्यक्तित्व का विशेष स्थान है पात्र के चरित्र में व्यक्तित्व विशेषतः सन्निहित रहती है। विख्यात अंग्रेज लेखक आलपोर्ट ने व्यक्तित्व की परिभाषा इसप्रकार दी है - "व्यक्तित्व व्यक्ति के अंतर्गत उन मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जिन पर उसके वातावरण के प्रति होने वाले विशिष्ट आयोजन निर्भर करते हैं।"[13]

व्यक्तित्व के बारे में जैनेद्रकुमार का कथन है कि "वस्तुतः व्यक्तित्व पात्र के भीतर की उस अंतरंग मानस शक्ति को कहते हैं जिससे वह प्रेक्षकों की रूचि और कल्पना को बाँध लेता है और ऐसे हर पात्र के प्रति दर्शकों के मन में देखने की एक चाह और उत्सुकता बनी रहती है।[14]

नाटककार पात्रों के चरित्र-चित्रण में उसके संस्कारों एवं परिस्थितियों पर अपनी दृष्टि केन्द्रित कर उसके चारित्र्य, व्यक्तित्व के अंग अंग को स्पष्ट कर सच्चे जीवन की सृष्टि करने में समर्थ होता है।

डॉ॰लक्ष्मीराय के अनुसार - "नाटक के चरित्रों का सौन्दर्य अन्तर्द्वन्द्व से ही निखरता है, वही प्रधान साधन है, जिससे पात्रों के चरित्रों की सूक्ष्मता स्पष्ट होती है।[15] वह आगे कहती है - "नाटकीय पात्रों के चरित्र विकास में द्वन्द और संघर्ष की अनिवार्य स्थिति स्वीकार की गयी है। संघर्ष एवं द्वंद की अन्तःप्रेरणा से ही चरित्र विकसित होता है। मानव कोई ठोस वस्तु नहीं है। उसके जीवन में एक प्रकार की गहराई, परिवर्तन की क्षमता और अन्तर्विरोध होता है।[16]

मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में जब हम नाटक का अध्ययन करते हैं तब हमें यह भी दिखाई देता है कि आज का नाटककार अपनी चरित्र-सृष्टि में मानव के खण्डित व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करता है। खण्डित व्यक्तित्व का सामान्य अर्थ है किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विभाजित हो जाना या टूट जाना है। आधुनिक जीवन

में आज का व्यक्ति इतना त्रस्त है, ध्वस्त है, आकुल है,व्याकुल है कि वह कहीं न कहीं टूट जाता है। उसके व्यक्तित्व को बीच-बीच में छेद जाते हैं। खण्डित व्यक्तित्व को अंग्रेजी में Split Personality कहा जाता है। चरित्र-चित्रण की यह एक उत्कृष्ट प्रणाली है। आज के टूटे हुए मानव के बारे में आधुनिक युग-संदर्भ मे डॉ·विपिनकुमार अग्रवाल के विचार उचित ही हैं -

"आज के मानव का माथा एक ओर लढका हुआ है और उसके पैरों की गति गायब है। इतना ही क्यों वह भूखा है, असंतुष्ट है, भ्रमित है, आत्मनिर्वासित है, विघटित है और अपने आप से बेखबर है। घरवाला होकर भी बेघर है, व्यक्तित्ववान होकर भी अव्यवस्थित है और सब कुछ का स्थायी होकर भी जीवन तत्वों से दूर है तो उसके स्नायुतंत्र में तनाव पैदा हुआ, उसकी विचार शक्ति प्रबल हो उठी और तो और उसमे कही भीतर ही तथा कसमसाने लगा।"[17]

पात्र और संवाद

नाटक का प्राणतत्व संवाद ही है। पूरे नाटक में प्रारंभ से अंत तक संवाद होते हैं। जिन संवादों में नाट्य होता है वह नाटक विशेष सफल होता है।

संवाद वस्तुतः नाटक की क्रिया में भाग लेने वाले व्यक्तियों की बातचीत है। जब दोया दो से अधिक व्यक्ति इकट्ठे होते हैं तो आपस में बातचीत भी करते हैं। यह बातचीत अनेक प्रकार की हो सकती है। अपने चरित्रों को विभिन्न स्थितियों में रखकर नाटककार उनसे आपस में बातचीत करवाता है और साथ ही उन स्थितियों के अनुसार चरित्र कुछ क्रियाएँ भी करते जाते हैं। नाटक इसीसे आगे बढ जाता है।

"दर्शकों या ग्राहकों तक पहुँचनेवाला नाटककार द्वारा निर्मित प्रत्यक्ष तत्व केवल मात्र संवाद है। नाटककार के हाथों में संवाद ही एकमात्र साधन है। जिसके द्वारा उसे अपनी समस्त अभिव्यक्तियों को उतारना पडते हैं।[18] वे आगे लिखते हैं -

"नाटक की संवाद-रचना पर रंगमंचीय तत्व एक दूसरे प्रकार से भी प्रभाव डालता है। नाटक के संवाद अभिनेताओं द्वारा कहे जाते हैं। अभिनेता अपने अधिकांश अभिनय-कुशलता और अपना प्रभाव संवादों को कहने की प्रक्रिया साथ ही व्यक्त करता है। अतः वह चाहता है कि संवाद ऐसे हो जिनके द्वारा उसे अपनी अभिनय क्षमता के अधिकतम उपयोग के अवसर मिल सके।[19]

विशेष बात यह है कि बिना कथोपकथन के अभिनय नहीं उभरता और बिना अभिनय के कथोपकथन निष्प्राण होता है। साधारण बातचीत न हो तो दर्शकों को प्रभावित कर सकती है और न नाटक के उद्देश्य को पूरा करने में समर्थ होती है। उसका अभिनेय होना नितान्त आवश्यक है। अभिनेयता क्रियाशीलता से उत्पन्न होती है तथा क्रियाशीलता में उत्कर्ष द्वंद के द्वारा ही सम्भव होता है। इस द्वंन्द की वाहिका नाट्यवस्तु है।[20]

चरित्र-सृष्टि और रंगमंचीयता

रंगमंच नाटक का एक महत्वपूर्ण ऐसा तत्व है जिसमें नाटककार, निर्देशक, अभिनेता, रंगमंचीय विविध उपकरण तथा रंगदीपन या प्रकाशयोजना, ध्वनि संकेत, संगीत इत्यादी कथावस्तु के साथ ही साथ पात्र की चरित्र-सृष्टि करता है। नाटककार सर्व प्रथम नाटक में पात्रों का आयोजन करता है और तत्पश्चात वह पात्र रंगमंच पर अभिनेता के रूप में प्रकट होता है। पात्र की वेशभूषा, गतिशीलता, वाणी को अभिनेता ही साकार रूप देता है। जिसकी वजह सक नाटककार द्वारा शब्दों में अंकित पात्र अभिनेता के अभिनय से रंगमंच पर सजीव रूप धारण करता है और दर्शक गण उससे प्रभावित होता है। इसप्रकार नाटककार का शब्दबद्ध पात्र अभिनेता के माध्यम से रंगमंच पर अपनी अर्थवक्ता प्रकट करता है। नाट्य-रचना में जितना महत्व लेखक की चरित्र-सृष्टि का होता है, रंगमंच की प्रक्रिया में अभिनेता की भी महत्वपूर्ण और सार्थक भूमिका होती है। रंगमंच पर पात्र का चारित्र्य जितने सहज और प्रभावपूर्ण ढंग से उभरेगा वह पात्र उतना ही जीवन्त और व्यक्तित्व युक्त होगा।

नाटककार अपने नाटकों के चरित्रों का निर्माण करते समय चाहे जिस सैद्धान्तिक मान्यता का उपयोग करे उसे एक तथ्य को बराबर अपनी दृष्टि में रखना पडता है कि वह चरित्रों की उसकी कल्पना दर्शकों तक अभिनेता के माध्यम से ही पहुँच सके। नाटककार उपन्यास या कहानी का बिम्ब सीधे दर्शकों तक नहीं पहुँच सकता उसे अभिनेयता के माध्यम का सहारा लेना होगा और नाटककार द्वारा निर्मित चरित्र जिस रूप में दर्शकों तक पहुँचा है उसमें नाटककार का कितना हिस्सा है और अभिनेता तथा निर्देशक की सर्जक-शक्तियों तथा दोनों का कितना प्रभाव है, इसे अलग करना आसान नहीं। "अभिनेता का यह माध्यम नाटककार के ऊपर इतना गहरा और महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है कि उसकी चरित्र कल्पना उपन्यासकार या कहानीकार की तुलना में तात्विक रूप से अलग और कहीं अधिक कठिन हो जाती है।"[21]

अभिनेता और दर्शक

नाट्य-प्रदर्शन में सबसे महत्वपूर्ण कार्य अभिनेताओं का होता है। वे कलासर्जन का कार्य दर्शकों की उपस्थिति में ही करते हैं। यदि दर्शकों से उन्हें निरन्तर अनुकूल प्रतिक्रिया मिलती रहती है तो कलासर्जन की उनकी भावोत्तेजना बनी रहती है और वे उत्कृष्ट कोटि की कला को जन्म देते हैं। किन्तु यदि रंगशाला के थोडे से दर्शक भी प्रतिकूल या ठंडी प्रतिक्रिया देकर अभिनेताओं को हतोत्साह कर दें तो कलार्सजन का स्तर बहुत ही गिर जाएगा और कभी-कभी तो सर्जन कार्य असम्भव भी हो उठेगा।

"नाटक के आदर्श निकाल में नाटक के पात्रों, अभिनेताओं और दर्शकों की सारी वैयक्तिक विशिष्टताएँ तिरोहित हो जाती हैं ओर उनमें एक ऐसी सार्वजनिक एकसूत्रता आ जाती है तथा भावनाओं को ऐसी निर्वैयक्तिकता मिल जाती है कि वे सब एक साथ नाटक मे व्यक्त मनोभावों से प्रभावित हो सकते हैं।[22]

अभिनेयता

वास्तव में कुशल अभिनय ही नाटक की आत्मा का साक्षात्कार करवा सकता है। अच्छे अभिनेताओं के अभाव में बहुत अच्छा नाटक भी मंच पर असफल हो जाता है और अच्छे कुशल अभिनेताओं के होने पर कभी-कभी कमजोर नाटक भी मंच पर सफलता प्राप्त कर लेता है।[23]

नाटककार का दायित्व

चरित्र-निर्माण के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बात यह है कि नाटककार को अभिनय कला उसकी तकनीक, अभिनेता की रुचियों, शक्तियों और सीमाओं का गहरा ज्ञान रखना आवश्यक है, जिससे एक ओर तो नाटक में प्रस्तुत चरित्रों की रूपरेखा, अभिनेताओं और निर्देशकों की सर्जनशील कल्पना को उत्तेजित कर सके दूसरी ओर अभिनयकला द्वारा की जा सकने वाली शक्तियों का अधिकतम उपयोग हो सके।[24]

नाट्य-प्रस्तुति और निर्देशक

चरित्र की अभिव्यक्ति के लिए कुछ निर्देशक भी कई रंग-विधाओं का जीवंत प्रयोग कर दिखाते हैं। निर्देशक, नाटक पात्र के अंतरंग और बहिरंग परिचय के लिए उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करता है। इसके लिए वह विविध रंग उपकरणों का प्रयोग करता है। जिनमें दृश्य विधान और वेशभूषा तो महत्वपूर्ण है ही, रूपण ﴾मेकअप्﴿, प्रकाश-व्यवस्था, गति ﴾मूवमेंटस्﴿ आदि का भी कम महत्व नहीं है। रंगकर्मी सजीव वातवरण की सृष्टि द्वारा सभी प्रकार के पात्रों को उसके संपूर्ण मानसिक और भौतिक परिवेश के साथ प्रस्तुत करता है।

चरित्र

विभिन्न नाटक-मंडलियों और निर्देशकों की सीमाएँ, शक्तियाँ और कल्पना अलग अलग प्रकार की होती हैं और उन्हीं के अनुसार वे नाटक के चरित्रों की व्याख्या और मंच पर उनका उपस्थितीकरण करते हैं। इस प्रकार नाटककार द्वारा की गयी चरित्र की मूल कल्पना मंच पर निरन्तर परिवर्तित होती आती रहती है।"[25]

"विभिन्न रुचियों के लोगों को एक साथ उच्च कलात्मक स्तर पर संतुष्टि देना कोई सरल कार्य नहीं। इसमें अत्यधिक कुशलता, अनुभव और प्रतिभा की आवश्यकता होती है और बहुत कम ही नाटककार इस दृष्टि से उत्तम रचना कर पाते हैं।[26]

विवेच्य नाटकों में पात्र और चरित्र-सृष्टि

हमारे विवेच्य नाटक हैं - मोहन राकेश लिखित "आषाढ़ का एक दिन" और सुरेन्द्र वर्मा लिखित "आठवाँ सर्ग"। ये दोनों नाटक स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पात्रसृष्टि की अभिनव कल्पना की दृष्टि से ये दोनों नाटक बेजोड हैं। दोनो नाटकों का नायक संस्कृत कविकुलगुरू कालिदास है। जिसके चरित्र का विस्तृत विवेचन और विश्लेषण अध्याय क्रमांक तीन और चार में करना हमारा उद्दिष्ट है। तथापि विवेच्य नाटकों के अन्य पात्रों का सन्दर्भ भी कालिदास के चरित्र-सृष्टि से प्रत्यक्षतया अप्रत्यक्षतया सम्बन्धित है। अतः विवेच्य नाटकों के कालिदासोतर पात्रों का संक्षिप्त विवेचन अनुसंधान की पृष्ठभूमि के रूप में यहाँ किया जा रहा है।

"आषाढ़ का एक दिन" में कालिदासेतर चरित्र-सृष्टि

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककारों मे मोहन राकेश एक विशिष्ट ख्यातिप्राप्त नाम है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में क्रांति करने वाले वे एक युगान्त कालीन नाटककार हैं। "आषाढ़ का एक दिन", "लहरों के राजहंस", "आधे अधूरे" और 'पैर तले की जमीन' उनके चार प्रकाशित नाटक हैं।

"आषाढ़ का एक दिन" कालिदास की जीवन पर आधारित आधुनिक यथार्थवादी नाटक है। इस नाटक में पात्रों की संख्या सीमित है। स्त्री और पुरूष दोनों ही प्रकार के पात्रों को इस नाटक में स्थान मिला है। "आषाढ़ का एक दिन" नाटक के प्रमुख पात्र है - कालिदास, मल्लिका, अम्बिका और विलोम तथा प्रियंगुमंजरी। गौण पात्रों मैं निक्षेप, दन्तुल, मातुल, अनुनासिक, अनुस्वार, रंगिणी तथा संगिनी। नाटककार मोहन राकेश ने इन सभी पात्रों केक चरित्र-सृष्टि मानवी धरातल पर की है। इसलिए ये पात्र सजीव हैं और यथार्थवादी भी हैं।

मल्लिका

मल्लिका मोहन राकेश ने नारी पात्रों में एक अमर पात्र है। "आषाढ़ का एक दिन" की नायिका मल्लिका ही है। नाटक के तीन अंक हैं। नाटक के तीनों अंकों में आरम्भ से अन्त तक मल्लिका छायी हुई है। मल्लिका कालिदास की प्रेयसी के रूप में इस नाटक में चित्रित हुई है।

"आषाढ़ का एक दिन" नाटक में मल्लिका, ग्रामबालिका के रूप में चित्रित किया है। वह ग्राम-प्रान्तर की एक सरल, भावप्रवण, भोली-भाली युवती है। उसके पिताजी चल बसे हैं, उसकी माता का नाम अम्बिका है। मल्लिका की आर्थिक दशा ठीक नहीं है। एक टूटे-फूटे प्रकोष्ठ में ही वह अपनी माँ के साथ रहती है।

मोहन राकेश ने मल्लिका को प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है। मल्लिका प्रकृति की प्रेमिका है। कभी वह अपने प्रियकर कालिदास के साथ पर्वत-शिखरों पर भ्रमण करती है तो कभी बारिश में भिगती रहती है। कभी बारिश में मेघ गर्जन और बिजली की कडकडाहट सुनकर भावविभोर हो जाती है। तो कभी प्रकृति के सौन्दर्य से अभिभूत होकर नाचने, गुनगुनाने लगती है।

मल्लिका भावप्रवण युवती है, उसे यथार्थ जीवन के प्रति कोई विशेष चिन्ता नहीं है। जब माँ उसके शादी के बारे में सोचती है, तब वह उत्तर देती है कि - "जीवन की स्थूल आवश्यकताएँ नहीं तो सब कुछ नहीं है माँ।"[27] वह कालिदास के साथ ग्राम-प्रान्तर में घुमती-फिरती रहती है लेकिन उसे लोकापवाद की परवाह नहीं है। वह अपनी माँ से स्पष्ट ही कह देती है कि "मैंने भावना में एक भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से प्रेम करती हूँ जो पवित्र है कोमल है, अनश्वर है।[28]

मल्लिका अनिंद्य सुंदरी है। इसमें संदेह नहीं कि "सौंदर्य ही सत्य है और सत्य ही सौंदर्य है।"
कालिदास की पत्नी प्रियंगुमंजरी भी मल्लिका के सौन्दर्य की प्रशंसा करती है। प्रियंगुमंजरी

के शब्दों में -"इस सौन्दर्य के सामने जीवन की सब सुविधाएँ हेय हैं। इसे आँखों में व्याप्त करने के लिए जीवन भर का समय भी पर्याप्त नहीं।[29]

मल्लिका कालिदास की अनन्य प्रेमिका है। कालिदास कवि के रूप में महान हो, उसकी कीर्ति सारे जगत् में फैल जाय इसी कारण वह उसे उज्जयिनी भेजती है और स्वयं विरहिणी बन जाती है । अपने प्रियकर कालिदास के सभी ग्रंथ खुद खरीदकर पढती है। इतना ही नहीं जब कालिदास विवाहित होकर अपने गाँव आता है तब भी मल्लिका कालिदास पर गुस्सा नहीं करती। प्रियंगुमंजरी मल्लिका की अनुनासिक या अनुस्वार से शादी करने का प्रस्ताव रखती है लेकिन मल्लिका उस प्रस्ताव को ठुकराती है।

जब उसे मातुल सताता है कि कालिदास ने संन्यास लिया है तब उसे बहुत दुःख होता है। मल्लिका के मन में यह अभिलाषा है कि उसने जो कोरे पृष्ठ इकट्ठे किये हैं उस पर कालिदास एक महाकाव्य की रचना करे।

मल्लिका एक स्वाभिमानी युवती है। प्रियंगुमंजरी मल्लिका के घर का परिसंस्कार करना चाहती है लेकिन मल्लिका उस प्रस्ताव को ठुकराती है। मल्लिका अहंवादी भी है। जब कालिदास और उसके बारे में लोकापवाद फैल जाता है तब वह अम्बिका से कहती है कि "मल्लिका का जीवन उसकी अपनी सम्पत्ति है वह उसे नष्ट करना चाहती है तो किसी को उस पर आलोचना करने का क्या अधिकार ?"[30]

नाटककार ने मल्लिका का चरित्र चित्रण खंडित व्यक्तित्व के रूप में किया है। कभी वह आर्थिक विवशता के कारण टूटती है तो कभी अपने प्रियकर के विरह के कारण भी टूटती है। नाटक के तीसरे अंक में कालिदास उज्जयिनी से क्षत-विक्षत-सा वापस लौटता है तब वह कहती है, "तुमने लिखा था कि एक दोष गुणों के समूह में उसी तरह छिप जाता है, जैसे चाँद की किरणों में कलंक, परन्तु दारिद्र्य नहीं छिपता। सौ-सौ गुणों को छा लेता है एक-एक करके नष्ट कर देता है। परन्तु मैंने यह सब सह लिया। इसलिए कि मैं टूटकर भी अनुभव करती रही कि तुम बने रहे हो।[31]

नाटक के अंत में नाटककार ने मल्लिका को दिधा अवस्था में चित्रित किया है। एक ओर वह कालिदास से अटूट प्रेम करती है और दूसरी ओर आर्थिक विपन्नता के कारण विलोम के अधीन हो जाती है। वह एक बच्ची की माँ बन जाती है। नाटक के अंत में जब कालिदास वापस अपने गाँव आ जाता है और मल्लिका से कहता है कि वह अपना जीवन मल्लिका के साथ अथ से प्रारम्भ करना चाहता है तब उसे एक बच्ची के रोने की आवाज आती है तो विस्मित रूप से कालिदास पूछता है कि यह किसके रोने की आवाज है तो मल्लिका बताती है कि "यह मेरा वर्तमान है।"

इसप्रकार नाटककार ने मल्लिका को माँ के रूप में और प्रेयसी के रूप में चित्रित किया है।

मल्लिका कालिदास की केवल प्रेमिका नहीं हैं तो उसके साहित्य की प्रेरणा भी है। कालिदास के शब्दों में - "कुमारसम्भव" की पृष्ठभूमि यह हिमालय है और तपस्विनी उमा तुम हो। "मेघदूत" के यक्ष की पीड़ा मेरी पीडा है और विरही विमर्दिता यक्षिणी तुम हो - यद्यपि मैंने स्वयं यहाँ होने और तुम्हें नगर में देखने की कल्पना की। "अभिज्ञानशाकुन्तल" में शाकुन्तल के रूप में तुम्ही मेरे सामने थी। मैंने जब-जब लिखने का प्रयत्न किया तुम्हारे और अपने जीवन के इतिहास को फिर फिर दोहराया। और जब उससे हटकर लिखना चाहा, तो रचना प्राणवान नहीं हुई।[32]

इसप्रकार मल्लिका कालिदास की प्रेरणा है।

अम्बिका

नाटककार मोहन राकेश नारी मनोविज्ञान के पारखी हैं। इसीकारण उन्होंने क्या मल्लिका, क्या अम्बिका, क्या प्रियंगुमंजरी तीनों ही नारी पात्रों का चरित्र-चित्रण नारी स्वभाव की विशेषताओं को ध्यान में रखकर किया है।

नाटककार ने अम्बिका की सबसे पहली विशेषता यह दिखायी है कि अम्बिका एक चिंतातुर माँ है। उसे अपनी बेटी की शादी की मूलतः चिंता है। नाटक के प्रारम्भ में मल्लिका और अम्बिका के स्वभाव में जो विरोधाभास है वह महत्वपूर्ण है। मल्लिका बारिश में भिगकर आती है, पर्वत-शिखरों पर घूमती रहती है यह उसे अच्छा नहीं लगता है। मल्लिका के बारे में जो लोकापवाद फैलता है इसी कारण वह चिंतातुर है। अतः नाटककार ने अम्बिका को नाटक में चिंतातुर माँ के रूप में चित्रित किया है। अम्बिका एक विधवा नारी है।

अम्बिका एक कठोर नारी के रूप में चित्रित है, कालिदास के प्रति उसके मन में बिलकुल ममता नहीं है। यद्यपि कालिदास उसकी बेटी मल्लिका का प्रियकर है। अम्बिका उसके बारे में सोचती रहती है कि "वह व्यक्ति आत्म-सीमित है। संसार में अपने सिवा उसे और किसीसे मोह नहीं है।"[33]

इतना ही नहीं जब कालिदास को राजकवि का सम्मान मिलने वाला है और हमारे घर में उसका §कालिदास§ का अतिथ्य होना चाहिए ऐसा मल्लिका कहती है तो अम्बिका इससे सहमत नहीं होती।

नाटककार मोहन राकेश ने अम्बिका को एक ठोस यथार्थवादी पात्र के रूप में चित्रित किया है। जहाँ उसकी बेटी मल्लिका भावना-प्रधान युवती है वहाँ अम्बिका वास्तविक जीवन से अधिक परिचित है इसलिए संदेह नहीं कि केवल कोरी भावना पर उसका विश्वास नहीं है। जब कालिदास और मल्लिका के विवाह की बात चलती है तब अम्बिका अपनी बेटी मल्लिका से स्पष्ट कहती है कि, "किसी संबंध से बचने के लिए अभाव जितना बडा कारण होता है, अभाव की पूर्ति उससे बड़ा कारण बन जाती है।" इतना ही नहीं अम्बिका यह भी स्पष्ट करती है कि मल्लिका पूरी तरह से माँ पर आश्रित है। जब अम्बिका की मृत्यु हो जाती है और मल्लिका को एकाकी जीवन व्यतीत करना पडता है तब वह आखिर में विलोम के साथ जुड़ जाती है और विलोम से एक बच्ची की माँ बन जाती है। यही जीवन की वास्तविकता है। भले ही मल्लिका विलोम से नफरत करती हो लेकिन आखिर में उसे उसका

ही सहारा लेना पडता है।

यद्यपि अम्बिका मल्लिका के प्रति अपनी ममता प्रकट करती है तो उसकी बेटी की कोरी भावना के प्रति अपनी नापसंदी भी व्यक्त करती है। जब मल्लिका कालिदास से मिलने के लिए जगदम्बा के मंदिर जाना चाहती है तब वह उसे रोकने की कोशिश करती है। अम्बिका कालिदास के प्रति घृणा भाव व्यक्त करती है। राजकर्मचारी के साथ मल्लिका शादी करे तथा घर का परिसंस्कार हो, इस प्रस्ताव को मल्लिका ठुकराती है यह बात अम्बिका को पसन्द नहीं है।

नाटककार ने अम्बिका के पात्र में घृणाभाव का भी सुंदर चित्रण किया है। अम्बिका के मन में सबसे ज्यादा घृणाभाव मल्लिका का प्रियकर जो कालिदास है उसके प्रति है। जब कालिदास उज्जयिनी नहीं जाना चाहता तब अम्बिका मातुल से कहती है कि वह उज्जयिनी अवश्य जायेगा। वह इतना भी कहती है कि "तुम्हारा भागिनेय लोकनीति में निष्णात है।[34]

अम्बिका का खण्डित रूप भी इस नाटक में देखने को मिलता है। अम्बिका के मना करने पर भी जब मल्लिका कालिदास से मिलने के लिए चली जाती है तब अम्बिका टूट जाती है। प्रियंगुमंजरी के प्रस्ताव मल्लिका ठुकराती है तब भी अम्बिका टूट जाती है। इतना ही नहीं वह यह भी प्रियंगुमंजरी से बता देती है कि हम दोनों अर्थात माँ-बेटी पूरी तरह से टूट गयी हैं।

नाटक के अंत में आर्थिक अभाव के कारण और बेटी की चिन्ता के कारण आखिर में वह यह टूटी हुई अम्बिका एक दिन संसार से विदा होती है।

विलोम

"आषाढ़ का एक दिन" नाटक में नाटककार मोहन राकेश ने विलोम का नाटक का खलनायक के रूप में चित्रित किया है। कालिदास की तरह विलोम भी कवि था किन्तु प्रेम में उपेक्षित होकर उसकी कविता के प्रति दिलचस्पी नहीं रहती

है। कालिदास इस नाटक में भावुक है परन्तु विलोम वास्तववादी है।

विलोम मल्लिका को चाहता है लेकिन मल्लिका उससे प्यार नहीं करती है। मल्लिका हमेशा विलोम को अपमानित करती है लेकिन फिर भी वह मल्लिका के प्रति आस्था रखता है। कालिदास भावुक है यह विलोम को पसन्द नहीं। कालिदास राजकवि का सम्मान पाने के लिए उज्जयिनी जाने से पूर्व विलोम मल्लिका को कालिदास से विवाह कर लेने की सलाह देता है क्योंकि उसे मालूम है कि वे दोनों एक दूसरे से प्यार करते हैं।

नाटक के प्रथम अंक में हमे दिखाई पडता है कि विलोम स्पष्टवादी है। उसे व्यक्ति की परख है। वह मल्लिका के विषय में कहता है - "मल्लिका बहुत भोली है। वह लोक और जीवन के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानती।"[35] वह कालिदास और अपने बीच जो अन्तर देख पाता है उसे भी स्पष्ट शब्दों में कह देता है "विलोम क्या है ? एक असफल कालिदास····और कालिदास ? एक असफल विलोम। हम कही एक दूसरे से बहुत निकट पडते हैं।

कालिदास जब उज्जयिनी जा रहा है तब वह व्यंग्य से कहता है, "राजधानी के वैभव में जाकर ग्राम-प्रान्तर को भूल तो न जाओंगे ? सुना है वहाँ जाकर व्यक्ति बहुत व्यस्त हो जाता है। वहाँ के जीवन में कई तरह के आकर्षण है···रंगशालाएँ मंदिरालय, और तरह-तरह की विलास-भूमियाँ।"[37]

विलोम की वाणी कटु है लेकिन वह मल्लिका का शुभ चाहता है। वह कालिदास के हित की कामना करता है। उसकी प्रतिदंदिता सराहनीय है। वह कालिदास से कहीं ज्यादा दूरदर्शी है।

विलोम अम्बिका से कहता है कि वह कालिदास को मल्लिका से विवाह करने पर बाध्य करे। लेकिन अम्बिका उसकी बात नहीं मानती है। इसके बाद जब कालिदास का विवाह प्रियंगुमंजरी से होता है और कश्मीर जाते समय वह मल्लिका से मिलने जाती है तो विलोम स्वयं अम्बिका के घर जाकर उसे व्यंग्यभरे

शब्दों में कहता है - "इस प्रकार क्षुब्ध क्यों हो अम्बिका ? आज तो सारा ग्राम तुम्हारे सौभाग्य पर तुमसे स्पर्धा कर रहा है। राजकीय पगधूलि घर में पडती है तो लोग गौरव का अनुभव करते हैं। ऐसा अवसर किसी के जीवन में कहाँ आता है।[38]

विलोम के चरित्र का सबसे बडा दोष यह है कि कटु व्यंग्य करने में वह न तो समय और स्थान देखता है और न वह व्यक्ति की भावना की परवाह ही करता है। वह इस प्रकार का बर्ताव इसलिए करता है कि उसकी परवाह भी किसी ने नहीं की थी। अम्बिका के मृत्यु के बाद मल्लिका टूटकर बिखर जाती है तब आखिर में उसे विलोम का ही सहारा लेना पडता है। विलोम की वस्तुवादिता की यही विजय है। मल्लिका विलोम की पत्नी बन जाती है और उसके बच्ची को जन्म देती है। लेकिन लाख कोशिशों के बावजूद वह मल्लिका के हृदय पर काबू नहीं कर सकता है।

नाटक के अंतिम दृश्य में विलोम जब शराब के नशे में उन्मत्त होकर अपने घर में प्रवेश करता है तो मल्लिका के समक्ष कालिदास को देखकर जिस दार्शनिक भावभूमि के कालिदास से बात करता है वह विलोम के चरित्र को कितना ऊँचा उठा देता है जहाँ दर्शकों की पूर्ण सहानुभूति उसे प्राप्त होती है - "चला जाऊँ, क्यों तुम लौट आये हो ? क्योंकि वर्षों से छोडी भूमि आज तुम्हें अपनी प्रतीत होने लगी है ? ····क्योंकि तुम्हारे अधिकार शाश्वत हैं ? जैसे तुमसे बाहर जीवन की गति ही नहीं है ? तुम्हीं तुम हो और कोई नहीं है। लेकिन समय निर्दय नहीं। उसने औरों को भी सत्ता दी है, अधिकार दिये हैं, वह धूप और नैवेद्य लिये घर की देहली पर रुका नहीं रहा। उसने औरों को अवसर दिया है।···तुम चाहते हो कि मैं यहाँ से चला जाऊँ, मैं चला जाता हूँ। इसलिए नहीं कि तुम आज यहाँ अतिथि हो और अतिथि की इच्छा का मान होना चाहिए।[39] इसीप्रकार वह आगे भी कहता है - "देखना मल्लिका, अतिथ्य में कोई न्यूनता न रहे। जो अतिथि वर्षों में एक बार आया है, वह आगे जाने कभी आयेगा या नहीं।"[40] कालिदास के चरित्र को विकसित करने में और यथार्थवादी पात्र के रूप में विलोम अविस्मरणीय

पात्र है।

मातुल

नाटककार मोहन राकेश ने "आषाढ़ का एक दिन" नाटक में सभी पात्रों का यथार्थ, वास्तववादी चित्रण किया है। इस नाटक में मातुल नाम का एक पात्र है, जो नाटक का नायक कवि कालिदास का मामा है। मातुल का व्यक्तित्व सरल, सहज, ग्रामीण है। कालिदास का लालन-पालन मातुल ने ही किया है।

कालिदास जब राजकवि का सम्मान नहीं लेना चाहता है तो उसे यह अच्छा नहीं लगता है। वह चाहता है कि कालिदास वह सम्मान ग्रहण करे। वह कहता है - "एक तरह से राज्य की ओर से हमारे वंश का सम्मान किया जा रहा है। और वे वंशावतंस कहते हैं, "मुझे यह सम्मान नहीं चाहिए···।"[41] तब अम्बिका मातुल को कहती है कि कालिदास उज्जयिनी अवश्य जाएगा। सम्मान प्राप्त होने पर सम्मान के प्रति प्रकट की गयी उदासीनता व्यक्ति के महत्व को बढा देती है। तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए कि तुम्हारा भगिनेय लोकनीति में भी निष्णात है। तब मातुल अम्बिका से कहता है -"यह लोकनीति है, तो मैं करूंगा कि लोकनीति और मूर्खनीति दोनों का एक ही अर्थ है।"[42]

इसीप्रकार मातुल व्यवहारी भी है उसे अपने भागिनेय के कवि होने का विशेष गर्व नहीं है। कालिदास जब कहता है कि "मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूँ।" तो वह मल्लिका से कहता है , "मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें क्रय-विक्रय की क्या बात है। सम्मान मिलता है, ग्रहण करो। नही, कविता का मूल्य ही क्या है ?"[43] इसप्रकार वह कालिदास के प्रति अपना मत प्रकट करता है। वह नाटक के तीनों अंकों में तीन विभिन्न रूपों में प्रस्तुत होता है।

इसी प्रकार प्रथम अंक में वह कालिदास के सम्मान के प्रति उपेक्षा भावना की आलोचना करता है।

द्वितीय अंक में मातुल प्रियंगुमंजरी को मल्लिका से मिलवाता है। मल्लिका के बारे में वह प्रियंगु को बताता है कि वह सारे प्रदेश में सबसे सुशील सबसे विनीत और सबसे भोली लडकी है। तृतीय अंक में नाटककार मोहन राकेश ने यह दर्शाया है कि मातुल जो कालिदास के साथ उज्जयिनी गया हुआ था और वहाँ राजप्रसाद मे चिकने शिला खण्डों पर अपना पैर फिसल बैठा है और उसका एक पैर टूट गया है। इसी कारण उसे अब बैसाखी का सहारा लेना पडता है। मातुल को राजप्रासाद का वातावरण रास नहीं आता इसी कारण वह फिर से अपने गांव वापस आता हुआ बारिश में भिगकर मल्लिका के यहाँ उसके प्रकोष्ठ में आता है और उसे यह समाचार देता है कि कालिदास ने कश्मीर छोड दिया है और वहाँ के {उज्जयिनी} लोगों का विश्वास है कि उसने संन्यास लिया है।

मातुल के विशिष्ट प्रवेश हैं जो प्रेक्षकों पर तुरन्त प्रभाव डालते हैं। प्रस्तुत नाटक में मातुल एक विदूषक के रूप में दिखाई देता है, जिसका चित्रण अत्यन्त प्रभावकारी है।

प्रियंगुमंजरी

प्रियंगुमंजरी गुप्तवंश की राजकुमारी है। वह अनिंद्य सुंदरी है तथा उसे शास्त्रदर्शन का भी ज्ञान है। उसका विवाह कविकुलमणि कालिदास से हुआ है। वह राजनीति के दाँव-पेच में निपुण और विदुषी है। उसे अपने पति कालिदास पर नाज है और वह उससे बहुत प्यार भी करती है ।

नाटक के दूसरे अंक में केवल एक बार ही वह रंगमंच पर दिखाई देती है।

प्रियंगुमंजरी मातुल के साथ मल्लिका के घर जाती है। उसे मल्लिका के गाँव तथा उसके सौन्दर्य के प्रति स्पर्धा होती है। वह मल्लिका से कहती है, "यहाँ से बहुत दूर तक की पर्वत-श्रृंखलाएँ दिखाई देती है।···कितनी निर्व्याज सुन्दरता है। मुझे यहाँ आकर तुमचे स्पर्धा होती। [44]

मल्लिका प्रियंगु को उसके प्रदेश में रहने का आग्रह करती है और उसे कहती है कि यहाँ आपको असुविधा तो होगी। मल्लिका के इस आग्रह पर प्रियंगुमंजरी उसे बताती है कि - "इस सौन्दर्य के सम्मुख जीवन की सब सुविधाएँ हेय हैं। इसे आँखों में व्याप्त करने के लिए जीवन-भर का समय भी पर्याप्त नहीं।[45]

प्रियंगुमंजरी मल्लिका को विवाह के बारे में कहती है कि वह अनुस्वार या अनुनासिक इन दोनों में से एक के साथ विवाह करे। लेकिन मल्लिका प्रियंगु के इस प्रस्ताव का भी स्वीकार नहीं करती। इसी प्रकार वह मल्लिका को अपने साथ ले जाना चाहती है। लेकिन मल्लिका नहीं मानती है। कश्मीर जाने के बाद प्रियंगु मल्लिका के लिए द्रव्य भेजती है। जिसे मल्लिका साभार लौटा देती है।

इसप्रकार प्रियंगुमंजरी मल्लिका की मदद करना चाहती है लेकिन मल्लिका और अम्बिका को लगता है कि प्रियंगुमंजरी अपने शासन और सम्पत्ति का परिचय दे रही है ओर मल्लिका को उसकी भावना का मूल्य दे रही है। राजदुहिता ओर कालिदास की पत्नी के रूप में इस चरित्र का नाटक में स्थान है।

निक्षेप

निक्षेप यह ग्राम-पुरुष है। आर्य मातुल निक्षेप का उपहास करते हैं। जब कालिदास उज्जयिनी नहीं जाना चाहता तब वह मल्लिका से कहता है कि तुम कालिदास से अनुरोध करो कि वे उज्जयिनी जाये। निक्षेप बहुत समझदार ग्राम-पुरुष है। निक्षेप चाहता है कि कालिदास अवश्य उज्जयिनी जाये। उसे मालूम है, कि कालिदास को राजकीय सम्मान को मोह नहीं है। लेकिन वह कहता है कि इस अवसर का तिरस्कार करके वे बहुत कुछ खो बैठेगे। निक्षेप कहता है - "योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है। शेष पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा होती है।[46]

वह मल्लिका से यह कहता है कि तुमत कालिदास को जाने के लिए प्रेरित करो, अवसर किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। कालिदास यहाँ से नहीं जाते हैं, तो राज्य की कोई हानि नहीं होगी। राजकवि का आसन रिक्त नही रहेगा। परन्तु कालिदास जो आज हैं, जीवन भर वही रहेगे - एक स्थानीय कवि। जो लोग आज "ऋतुसंहार" की प्रशंसा कर रहे हैं, वे भी कुछ दिनों में भूल जा सकते हैं। इसप्रकार निक्षेप

का कालिदास के प्रति आदर तथा समय का महत्व ये गुण जान पडते है।

कालिदास के उज्जयिनी जाने के बाद और प्रियंगुमंजरी से शादी करने के बाद निक्षेप को ऐसा लगता है कि मल्लिका के दुर्भाग्य का कारण वही है।

रंगिणी, संगिनी

रंगिणी और संगिनी ये दोनों उज्जयिनी से कालिदास और प्रियंगुमंजरी के साथ ग्राम के जीवन का अध्ययन करने के लिए आयी हैं।

वे दोनों मल्लिका को बताती हैं कि इस प्रदेश ने कालिदास जैसी असाधारण प्रतिभा को जन्म दिया है। यहाँ की तो प्रत्येक वस्तु असाधारण होनी चाहिए।

राजकीय नियोजन से हम दोनों कवि कालिदास के जीवन की पृष्ठभूमि का अध्ययन कर रही हैं। यह बड़ा महत्वपूर्ण कार्य है लेकिन यहाँ घूमकर हम लगभग निराश हो चुकी हैं।

रंगिणी यह उज्जयिनी के नाट्य केंद्र में नृत्य का अभ्यास करती है और नाटक लिखने में भी उसकी रुचि है।

संगिनी उसी केंद्र में मृदंग और वीणा वादन सीखाती है। और सदुत सुन्दर प्रणय-गीत लिखती है और गद्य भी लिखना चाहती है।

अनुस्वार, अनुनासिक

अनुस्वार और अनुनासिक ये दोनों राज्य के अधिकारी हैं, और देव मातृगुप्त के अनुचर हैं।

जब कालिदास और प्रियंगुमंजरी ग्राम में जाते हैं और प्रियंगुमंजरी मल्लिका से मिलने उसके घर आना चाहती है यह (पूर्व सूचना देने) कहने अनुस्वार और अनुनासिक मल्लिका के घर पहुँचते हैं और मल्लिका के उपवेश गृह के वस्तु-विन्या में कुछ परिवर्तन करते हैं।

प्रियंगुमंजिरी ने उन दोनों को मल्लिका के घर सिर्फ औपचारिकता के लिए ही नहीं भेजा था तो इसलिए कि मल्लिका उन्हें देखे और उन दोनों मे से एक को अपने जीवन साथी के रूप में चुने।

दन्तुल

दन्तुल उज्जयिनी से आया हुआ एक राजपुरूष है। ग्राम में आकर वह एक हरिणशावक को बाण से आहत कर देता है। वहाँ उसकी भेंट कालिदास से हो जाती है।

दन्तुल को अपने राजपुरूष होने का अपने अधिकार का गर्व है। लेकिन जब उसे पता चलता है कि हरिणशावक को बचाने वाला और कोई नहीं कवि कालिदास ही है तो उसे अपने अशिष्टता व्यवहार पर खेद होता है।

दन्तुल आचार्य वररूचि के साथ इसलिए ग्राम आये थे कि सम्राट हर्षवर्धन उन्हें राजकवि का आसन देना चाहते हैं यह बात कालिदास तक पहुँचानी थी।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि मल्लिका, विलोम, अम्बिका, मातुल, प्रियंगुमंजरी, निक्षेप आदि पात्र कालिदास के चरित्र-सृष्टि में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सहायक हैं। अन्य गौण पात्र प्रासंगिक हैं।

"आठवाँ सर्ग" में कालिदासेतर चरित्र-सृष्टि

सुरेन्द्र वर्मा के "आठवाँ सर्ग" के अधिकांश पात्र ऐतिहासिक है। इन पात्रों की सृष्टि मानवीय स्वभाव, अभिरूचि, श्रृंगार आदि बातों में सहज, सुलभ और स्वाभाविक है। ऐतिहासिक पात्रों में मुख्यतया प्रियंगुमंजरी, सम्राट चन्द्रगुप्त कालिदास का मित्र सौमित्र स्वयं कालिदास आदि का समावेश किया जा सकता है। रंगमंच पर यह पात्र गुप्तकालीन स्वर्णयुग का सहज परिचय देने में समर्थ है। इन पात्रों के अतिरिक्त प्रियंवदा, अनसूया, कीर्तिभट्ट, धर्माध्यक्ष आदि पात्र इतिहासाभासित हैं। समेकित रूप में सुरेन्द्र शर्मा के इस नाटक की पात्र सृष्टि सोद्देश्य तथा सार्थक है।

प्रियंगुमंजरी

प्रियंगुमंजरी सम्राट चन्द्रगुप्त की बेटी है। वह विद्याविभूषित तथा चित्रकला संगीतकला, नृत्यकला में निपुण है तथा रूचि लेने वाली है। एक विदुषी और सौंदर्यशालिन राजकुमारी के रूप में उसका चरित्र लाजवाब है। वह संस्कृतकवि कुलगुरू कालिदास की प्रेयसी तथा बाद में पत्नी है। प्रियंगुमंजरी कालिदास के साहित्य की प्रेरणा है। नाटककार ने प्रियंगुमंजरी की जिज्ञासा को बडे ही सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है। शयनागर में जब कालिदास अपना काव्यपाठ प्रियंगुमंजरी के सामने प्रस्तुत करता हैव तब उसकी विनोदप्रियता, लज्जाशीलता, शृंगारिकता आदि बातें भी सहज ही पाठक के मन को लुभाती हैं। आठवें सर्ग के बारे मे कालिदास की उपमा के बारे में वह बड़ी ही दिलचस्प दिखाई देती है ओर कालिदास की नकल उतारते हुए कहती है, "इकसठवें श्लोक" में मेरा नाम नहीं लें आये हो ?····यह 3 दिन होता हुआ चन्द्रमा प्रियंगु के फल के समान लाल दिखलाई पड रहा है।···· सारे संसार मे बस यही एक उपमा रह गयी थी···"[47] "उपमा कालिदासस्य" उक्ति की याद यहाँ सहज उभर आती है।

अपने पति के प्रति प्रियंगुमंजरी के मन में अपार प्रेम, अपार श्रद्धा, अपार कुतुहल सहज ही दिखाई पडता है। कभी कभी उसे कुछ दुःख का भी एहसास होता है और वह कहने लगती है जिस सभामण्डप में कालिदास का राजसम्मान होने वाला है वहाँ मैं उपस्थित नहीं हो सकती। प्रियंगुमंजरी के शब्दों में - "इस उन्नत मस्तक पर सम्राट सुवर्ण पट्ट बाँधेगे। राजपुरोहित मांगलिक श्लोक पढ़ेंगे। धर्माध्यक्ष पूजन के पुष्पों की वर्षा करेंगे।····सभा-मण्डप गूँज उठेगा करतल-ध्वनि से ···लेकिन यह कैसी विडम्बना है कि जिस व्यक्ति को यह समारोह सबसे अधिक सुख देगा, वही उसमें सम्मिलित नहीं हो सकता।···"[48] नाटक के प्रथम अंक में कालिदास के राजसम्मान के आयोजन में अनुपस्थित रहने वाली प्रियंगुमंजरी नाटक के तीसरे अंक में 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक की स्वर्णजयन्ती के समारोह में उपस्थित रहकर अपने पति की प्रशंसा सुन सकती है। सहज अचरज यह है कि इस समय कालिदास अनुपस्थित रहता है। नाटक के अन्त में यह दिखाया गया है कि कालिदास

"कुमारसम्भव" को अधूरा छोड देता है। और उसकी पाण्डुलिपि के एक-एक पृष्ठ को देखता रहता है। उस समय सहधर्मचारिणी के रूप में वह अपने पति के पास बैठ जाती है कुछ आशंकित होती है और दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे की ओर देखते रहते हैं। यहाँ नाटक समाप्त होता है। कालिदास और प्रियंगुमंजरी की संवेदना मनोविज्ञान के धरातल पर खरी उतरती है। एक श्रेष्ठ राजदुहिता और सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास की पत्नी के रूप में और नाटक की नायिका के रूप में प्रियंगुमंजरी की व्यक्तिरेखा निःसंदेह विलोभनीय है।

सम्राट चन्द्रगुप्त

"आठवाँ सर्ग" नाटक का एक सशक्त पात्र सम्राट चन्द्रगुप्त है। नाटककार ने ऐतिहासिक पात्र के रूप में चन्द्रगुप्त को चित्रित करने में सफलता पायी है। जिस प्रकार ऐतिहासिक चन्द्रगुप्त एक वीरयोद्धा कलाप्रेमी, साहित्य के प्रति आस्था रखने वाला ऐतिहासिक चन्द्रगुप्त है। उसीप्रकार एक कलामर्मज्ञ के रूप में प्रतिष्ठापित है। सम्राट चन्द्रगुप्त, राजनीतिनिपुण है। प्रजा के प्रति भी उसके मन में आस्था है। और कालिदास के प्रति भी उसके मन में अपार प्रेम है। लेकिन "कुमारसम्भव" के बारे में यद्यपि कालिदास का शृंगार वर्णन वह स्वीकारता है। किन्तु अपने राज्य के बडे बडे कर्मचारी तथा छोटी-छोटी सामान्य जनता के भय से "कुमारसम्भव" के उमा-महादेव के शृंगार प्रसंग को उस किताब से हटाने की सलाह देता है। अपनी बेटी प्रियंगुमंजरी के प्रति भी उसके मन में अपार स्नेह है। लेखक की स्वतंत्रता स्वीकारते हुए भी समाज की और धर्माध्यक्ष आदि वरिष्ठ अधिकारी वर्गों का खयाल भी रखने वाला वह एक ऐतिहासिक सम्राट नजर आता है।

कीर्तिभट्ट

कीर्तिभट्ट "आठवाँ सर्ग" नाटक का एक महत्वपूर्ण पात्र है। कीर्तिभट्ट कालिदास का सेवक है। नाटक के प्रारंभ में आठवाँ सर्ग की रचना प्रक्रिया के बारे में प्रियवंदा को जानकारी देने वाला यह एक विशिष्ट पात्र है। "आठवाँ सर्ग" की संरचना सुनकर वह स्वयं कामविव्हल होता है और अपनी प्रेयसी प्रियंवदा

के साथ श्रृंगारी जीवन व्यतीत करने की इच्छा व्यक्त करता है। उसकी कामविव्हलता दर्शनीय है। वह प्रियंवदा से कहता है "देखो, आज मदनोत्सव का दिन है और मेरे उद्यान में अशोक और बकुल के पेड़ सूखे, ठूँठ-जैसे खडे हैं। संध्या समय कृपा कर मेरे घर पधारो। नुपूरों की मधूर झंकार के साथ मेरे अशोक पर पदप्रहार कर दो, अपने सुगन्धित मुँह से मदिरा का एक घूँट मेरे बकुल पर डाल दो, ताकि दोनो हरे-भरे हो जाएँ, लद उठें फलों और फूलों से..."[50] कीर्तिभट्ट कालिदास के प्रति आस्था रखने वाला, उसकी सेवा करने वाला तथा प्रियंवदा और अनसूया का नाम कालिदास के साहित्य में रोशन होने से कालिदास से ही अपने नाम के प्रति "शिकायत" करने वाला सेवक है।

धर्माध्यक्ष

गुप्तकालीन शासन प्रणाली में धर्माध्यक्ष का महत्वपूर्ण स्थान है। "आठवाँ सर्ग" नाटक में सुरेन्द्र वर्मा ने धर्माध्यक्ष का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। "आठवाँ सर्ग" की अश्लीलता पर कठोर प्रहार करने वाला तथा न्यायसमिति का अध्यक्ष के नाते सम्मानित होने वाला और सम्राट चन्द्रगुप्त को प्रासंगिक सलाह देने वाला कठोर शासकीय अधिकारी हैं।

सौमित्र

"आठवाँ सर्ग" नाटक का सौमित्र कालिदास के प्रति उसके मन में श्रद्धा और आस्था है। "कुमारसम्भव" के आठवें सर्ग में श्लीलता और अश्लीलता के बारे में नियुक्त की गई न्यायसमिति का वह एक सदस्य है। जहाँ धर्माध्यक्ष "कुमारसम्भव" का "आठवाँ सर्ग" अश्लील घोषित करता है वहाँ सौमित्र श्लीलता के पक्ष में रहता है। उसकी दृष्टि में "आठवाँ सर्ग" मे अश्लीलता नही हैं। कालिदास के सच्चे मित्र का संक्षिप्त चित्र नाटककार सुरेन्द्र वर्मा ने अच्छी तरह से रेखांकित किया है।

कुल मिलाकर आठवाँ सर्ग की पात्र और चरित्र-सृष्टि ज्यादातर ऐतिहासिक है। इतिहास की परिधि में कालिदास के चरित्र-चित्रण पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में प्रकाश डालने में सहायक हैं।

नि ष्क र्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि -

1· नाटक के प्राणतत्वों में पात्र और चरित्र-सृष्टि का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि बिना पात्रों के नाटक का रचनाविधान असंभव है।

2· भारतीय और पाश्चात्य विचारधारा को ध्यान में रखकर पात्रों की चरित्र-सृष्टि और प्रणाली पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

3· नाटककार द्वारा रेखांकित चरित्र-सृष्टि में रंगकर्मी (अभिनेता-अभिनेत्री) निर्देशक के योगदान को भी उल्लेखित किया गया है।

4· विवेच्य नाटकों के कालिदासेतर पात्रों का सर्वेक्षण पृष्ठभूमि के रूप में किया गया है।

5· शोधकार्य का मुख्य विषय कालिदास है जिसका विवेचन विश्लेषण अध्याय क्रमांक तीन और चार में प्रस्तुत किया जाने से यहाँ कालिदासेतर पात्रों को ही विवेचित किया गया है।

6· कालिदास के चरित्र को दोनों नाटककारों ने किस तरह रेखांकित किया है इसको दर्शाने के लिए केवल पृष्ठभूमि के रूप में पात्रों का परिचय किया गया है।

7· संक्षेप में विवेच्य नाटकों में प्रयुक्त कालिदास के चरित्र में सहायक रूप में उपर्युक्त पात्रों का सर्वेक्षण शोध-कार्य की दिशा की सूचक है।

सं द र्भ

1· नाट्यशास्त्रम् - भरतमुनि, संपा·बाबूलाल शुक्ल, पृ·26-27, संस्क·1972

2· वही, पृ· 27

3· वही, पृ·28

4· दशरूपकम् - धनंजय, व्याख्या-डॉ·भोलाशंकर व्यास, पृ·7, संस्क·वि·सं·2019

5· साहित्य में पात्र : प्रतिमान और परिरेखन - डॉ·रामशंकर त्रिपाठी, पृ·3, संस्क·1987

6· दशरूपकम् - धनंजय, व्याख्या-डॉ·भोलाशंकर व्यास, पृ·75, संस्क·वि·सं·2019

7· वही, पृ·93

8· वही, पृ·99

9· आधुनिक हिन्दी नाटक : चरित्र सृष्टि के आयाम - डॉ·लक्ष्मी राय, पृ·30 संस्क·1979

10· अरस्तू का काव्यशास्त्र - अनु·डॉ·नगेन्द्र, पृ·113, संस्क·1986

11· साहित्य में पात्र : प्रतिमान और परिरेखन - डॉ· रामशंकर त्रिपाठी, पृ·121, संस्क·1987

12· Outline of Psychology : Mc Dougal, P.526, Ed.1948

13· हिन्दी नाटक में पात्र-कल्पना और चरित्र-चित्रण - डॉ·सूरजकान्त शर्मा, पृ·67, संस्क·1975 (से उद्धृत)
'Personality is the dynamic organization within the individual of those Psychophysical system that determine the unique adjustment to his environment'.

14· साहित्य का श्रेय और प्रेय - जैनेंद्रकुमार पृ·164, संस्क·1961

15· आधुनिक हिन्दी नाटक : चरित्र सृष्टि के आयाम - डॉ·लक्ष्मी राय, पृ·50, संस्क·1979

16· वही, पृ·49

17· वही, पृ·161

18· नाट्य और नाटक - कुँवरजी अग्रवाल, पृ·21, संस्क·1990

19· वही, पृ·22

20· हिन्दी नाट्य-शिल्प - डॉ·अवधेश अवस्थी, पृ·32, संस्क·1990

21· नाट्य और नाटक - कुँवरजी अग्रवाल, पृ·18, सस्क·1990

22· वही, पृ· 24

23· हिन्दी विधाएँ : स्वरूपात्मक अध्ययन - डॉ·बैजलनाथ सिंहल, पृ·85, संस्क·1988

24· नाट्य और नाटक - कुँवरजी अग्रवाल, पृ·19 संस्क·1990

25· वही, पृ·19

26· वही, पृ·23

27· आषाढ़ का एक दिन - मोहन राकेश, पृ·13, संस्क·1986

28· वही, पृ·13

29· वही, पृ·68

30· वही, पृ·12

31· वही, पृ·13

32· वही, पृ·102

33· वही, पृ·23

34· वही, पृ·27

35· वही, पृ·35

36· वही, पृ·39

37· वही, पृ·38

38· वही, पृ·77

39· वही, पृ·109

40· वही, पृ·109

41· वही, पृ·26

42· वही, पृ·27

43· वही, पृ·26

44· वही, पृ·68

45· वही, पृ·68

46· वही, पृ·32

47· आठवाँ सर्ग - सुरेन्द्र वर्मा, पृ·32, संस्क·1976

48· वही, पृ·34

49· समकालीन हिन्दी नाटक - डॉ·सुन्दरलाल कथूरिया, पृ·106-107, संस्क·1992

50· आठवाँ सर्ग - सुरेन्द्र वर्मा, पृ·19, संस्क·1976

51· वही, पृ·65-66